International Journal of Sanskrit Research
अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 04-07
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 06-01-2015
Accepted: 07-02-2015

डॉ0 सुमन कुमार झा
वरिष्ठ–सहायकाचार्यः,
साहित्यविभागः,
`नउंदरींसइे / हउंपसण्बवउ
श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय
संस्कृतविद्यापीठम्, नई दिल्ली।

Correspondence
डॉ0 सुमन कुमार झा
वरिष्ठ–सहायकाचार्यः,
साहित्यविभागः,
`नउंदरींसइे / हउंपसण्बवउ
श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय
संस्कृतविद्यापीठम्, नई दिल्ली।

अभिज्ञानशाकुन्तलनाटके शकुन्तलायाः सामाजिकसामर्थ्यम

सुमन कुमार झा

साहित्य एवं समाज का एक विशिष्ट सहसम्बन्ध है। साहित्य का समाज के निर्माण तथा परिष्कार में महत्वपूर्ण अवदान माना जाता है। तो वही समाज के बदलते रूपों, मूल्यों, प्रतिमानों, आदर्शों, एवं उसकी विविध्ताओं का असर साहित्य में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।अतएव साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब भी कहा जाता है। साहित्यिक रचनाओं में समाज में विद्यमान सभी प्राणियों, जीव–जन्तुओं, तथा स्थावर – जघँम पदार्थों का चित्राण विविध प्रसघौं, एवं सन्दर्भों में महाकवियों के द्वारा किया जाता रहा है।

समाज का निर्माण स्त्राी–पुरुष के साहचर्य से सम्पÂ होता है। प्रकृति ने स्त्राी एवं पुरुष को एक दूसरे के पूरक के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। अतः स्त्राी–पुरूष एक दूसरे के पूरक हैं, प्रतिद्वन्द्वी नहीं। समाज का दायित्व है कि उसे परस्पर पूरक के रूप में ही देखे, समझें, विचार–विमर्श करे, उसे प्रतिद्वन्द्वी न तो समझें, और ऐसा मानने के लिए प्ररित भी न करें। तभी वह विमर्श सार्थक सि(होगा । अतएव भारतीय परम्परा, दर्शन एवं साहित्य में अर्ध्नारीश्वर की परिकल्पना की गयी है। रघुवंशमहाकाव्य के मघँलपद्य में महाकविकालिदास इस तथ्य को इस प्रकार कहते हैं–

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।।

अतः विविध भाषाओं में रचित साहित्यिक–ग्रन्थों में नारी–सशक्तिकरण एवं उसके सामाजिकसामर्थ्य का निरूपण कवियों एवं साहित्यकारों के द्वारा किया जाता रहा है। वस्तुतः साहित्यकारों का यह सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय दायित्व है कि वे समाज के सभी प्राणियों के अध्किारों एवं कर्त्तव्यों का निरूपण निर्भीकतापूर्वक करें।

यह तथ्य यद्यपि सभी भाषाओं में विरचित साहित्यग्रन्थों में उपलब्ध होता है, परन्तु **संस्कृतसाहित्य में तो नारी एवं समाज के विविध पक्षों का चित्राण भारतीय परम्परा के अनुसार, भारतीय समाज के सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों के अनुसार विध्–िनिषेध वाक्यों के द्वारा विशेष रूप से किया गया है।**

समग्र–संस्कृतसाहित्य में नाटड्ढसाहित्य का वैशिष्टड्ढ सर्वथा प्रथित है। **नाटकान्तं कवित्वम्, सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः, काव्येषु नाटकं रम्यम्, नाटड्ढं हि भिÂरुचेर्जनस्य बहुधर्{प्येकत्रा समाराध्नम्,** इत्यादि सूक्तियॅा प्रसि(हैं। संस्कृतनाटड्ढग्रन्थों में भी महाकवि कालिदासविरचित **अभिज्ञानशाकुन्तलनाटक का अद्वितीय स्थान** है। यह नाटक न केवल साहित्यिक एवं नाटड्ढशास्त्राीय तत्त्वों की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण है, अपितु नारी सशक्तिकरण की दृष्टि से, समाज में उसके स्थान एवं सामर्थ्य की दृष्टि से भी अति महत्वपूर्ण है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी इस काव्यकृति का संस्कृतवाघ्मय में विशिष्ट अवदान है।

इस नाटक में नारी–जीवन के विविध पक्षों, मनोभावों एवं परिस्थितियों का सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्राण प्राप्त होता है। नाटक के प्रमुख स्त्राी पात्रा के रूप में शकुन्तला का चरित्रा उपवर्णित किया है महाकवि कालिदास ने। इस नाटक के परिशीलन से शकुन्तला के अनेक रूप हमारे समक्ष आते हैं। उन रूपों में उसके जिस सामाजिक सामर्थ्य का निरूपण महाकवि कालिदास ने किया है वह भारतीय–समाज के लिए आदर्शभूत एवं अनुकरणीय हैं। प्राचीन भारतीय समाज में नारी की सामाजिक स्थिति क्या थी, उसके लिए अभिव्यक्ति की कितनी स्वतन्त्राता थी इत्यादि विषयों का निरूपण शाकुन्तलनाटक के विविध सन्दर्भों, नाटक में प्रयुक्त प्रतीकों, बिम्बों, प्रतिबिम्बों, प्रतीयमान–अर्थों, प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मूलक उपदेशों, निरूपित जीवन–दर्शन, अन्तर्निहित शिक्षा, कवि–विवक्षा के आधर पर एवं शकुन्तला के द्वारा प्रदत्त संवादों के आधर पर प्रस्तुत है।

मेरा तो विचार है कि यह साहित्यिक–रचना वस्तुतः एक नारी की जीवन–यात्राा है, जहॉ उसके जीवन के विविध्–रूपों, विविध्–अवस्थाओं एवं विविध्–पक्षों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया गया है। साथ ही नारीजीवन में आनेवाली अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों का भी निरूपण और उसका समाधन भी इस कृति में उपलब्ध् होता है।

इस सन्दर्भ में यदि हम महाकविकालिदास के द्वारा चित्रिात शकुन्तला के सामाजिक चरित्रा को देखते हैं तो वह सहज, स्वावलम्बी एवं सशक्त प्रतीत होती है। उसमें आत्मविश्वास, दृढनिश्चयी, निर्णय लेने की क्षमता, उस निर्णय के पीछे पूरे आत्मबल से खड़े होने का सामर्थ्य, विपरीत एवं कठिन परिस्थितियों में भी धैर्य को नहीं त्यागना, दारुण दुःख एवं झूठे आरोपों के क्षण मे भी अपने को सहज एवं संतुलित रखना, आदि शकुन्तला के व्यक्तित्व के सशक्त पक्ष हैं। प्रतीकार के स्थान पर अपने में तपोबल के द्वारा गुणोत्कर्ष करना, चरित्राबल के द्वारा समाज को अपने अनुकूल बनाना इत्यादि उसके जीवन के विशिष्ट पक्ष हैं, पफलतः शकुन्तला एक सशक्त स्त्राी–पात्रा के रूप में समाज के समक्ष अवतरित होती है। उसे अपने सामाजिक तथा धर्मिक ;विध्किद्ध अध्किारों एवं कर्त्तव्यों का ज्ञान है।

प्रस्तुत कृति में शकुन्तला के जीवन के कुछ महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं– 1 शकुन्तला को उनके माता–पिता ने त्याग दिया था। 2 महर्षि कण्व के द्वारा आश्रम में उसका पालन–पोषण किया गया। 3 माता पिता की पूर्व स्वीकृति के विना स्वेच्छा से राजा दुष्यन्त के साथ गान्ध्र्व विवाह किया। 4 अपने से वरिष्ठ सौतों , अर्थात् दुष्यन्त के कई अन्य रानियों के होते हुए भी मुख्य पत्नी का स्थान पाना। 5 अपने पुत्रा सर्वदमन ;भरतद्ध को हस्तिनापुर के चक्रवर्ती सम्राट के रूप में स्थापित करना , इत्यादि उसके सशक्त स्वरूप को प्रदर्शित करता है। शकुन्तला का निर्मल एवं पवित्रा चरित्रा उसे सशक्त नारी के रूप में प्रतिष्ठित करता है, समाज में उसके सामर्थ्य को बढ़ाता है। यथा च कथयति कालिदास :–

त्वमर्हतां प्रागसरः स्मृतोऽसि नः शकुन्तलाः मूर्तिमती च सत्क्रिया।
समानयंस्तुल्यगुणं वध्ूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः।। [1]

दुष्यन्त पूजनीयों में पूज्य है, शकुन्तला साक्षात् सत्क्रिया की अवतार है, पूजा स्वरूपा है। ऐसी सत्क्रिया स्वरूपा नारी का समाज में उच्च स्थान कवि की दृष्टि में स्वतः सि(है।

शकुन्तला के सशक्त चरित्रा का सबसे सुन्दर निदर्शन शाकुन्तल के प×चम अघड्ड में मिलता है जब शार्ङ्गरव, शारद्वत् तथा गौतमी के साथ शकुन्तला महर्षिकण्व के आशीर्वाद के साथ आश्रम से राजा दुष्यन्त के पास हस्तिनापुर जाती है। वहॉ भरी सभा में दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला सहित तपस्वीजनों का विविध् प्रकार से अपमान किया जाता है। आपÂसत्त्वा;गर्भवतीद्ध होने पर भी वह भयभीत नहीं होती है, बल्कि जीवन में आनेवाली कठिनाईयों का धैर्यपूर्वक साहस से सामना करती है। **प×चम अघड्ड में दुष्यन्त के द्वारा नहीं पहचानने पर भी, उसे अपने निर्णय पर कही से भी पश्चाताप नहीं है।** ये उसके दृढ आत्मविश्वास को दर्शाता है।

किं चात्रा भवती मया परिणीतपूर्वा? दुष्यन्त के द्वारा परिणय में ही संदेह उपस्थित किया जाता है। पुनः शकुन्तला को कूलंकषा, अर्थात् चरित्राहीन नारी की संज्ञा दी जाती है।

यथा च कथयति **दुष्यन्तः– शान्तं पापम्–**
व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम्?।
कूलघड्डषेव सिन्धुः प्रसÂमम्भस्तटतरुं च ।। [1]

इस पर शकुन्तला एवं गौतमी के द्वारा कई प्रकार के तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं। उसी क्रम में गौतमी के द्वारा यह कहने पर कि– महाभाग! नार्हस्येवं मन्त्रायितुम्। तपोवनसंवर्ध्तोऽनभिज्ञोऽयं जनः कैतवस्य। यहॉ राजा के द्वारा अत्यन्त ही निन्दित आरोप लगाया जाता है। यथा– तापसवृ(!

स्त्राीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोध्वत्यः।
प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजातमन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति।। [2]

दुष्यन्त के इस अत्यन्त घृणित एवं असहनीय टिप्पणी को सुनकर शकुन्तला का क्रोध्ति होना स्वाभाविक था। लेकिन जो प्रत्युत्तर शकुन्तला के द्वारा दिया जाता है वह उसके सशक्त–स्वरूप, अदम्य–साहस, सत्यनिष्ठता, दृढप्रतिज्ञ, आत्मविश्वास, निर्भीकता, सत्ता प्रतिष्ठान को चुनौती देने की क्षमता, सामाजिक–सामर्थ्य इत्यादि गुणों को परिलक्षित करता है। शकुन्तला का प्रत्युत्तर उस हस्तिनापुरसम्राट पुरुवंशी राजादुष्यन्त के लिए है जो कि राष्ट्र के मुख्य–न्यायाधीश, सर्वोच्च दण्डाध्किारी, र्ध्माध्किारी, एवं सैन्य–प्रमुख आदि है। **प्राचीनभारत में राजतंत्राीय शासनप(ति में राजा ही सभी विभागों के प्रमुख होते थे, इस तथ्य एवं कथ्य से हम सुपरिचित हैं।** ऐसे शक्तिशाली राजा से शकुन्तला कहती है– ;

सरोषम्द्ध **अनार्य ! आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि; प्रेक्षसेद्ध कः इदानीमन्यो र्ध्मक×चुकप्रवेशिनस्तृणच्छÂकूपोपमस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते।** [3]

नीच, अनार्य तू अपने हृदय जैसा ही दूसरे को भी समझता है। तुम्हारे सिवाय/अलावे/अतिरिक्त, इस समय अन्य कौन होगा, अर्थात् कोई नहीं, जो र्ध्म के चोगे में ;क×चुक, नकाब, लबादाद्ध इत्यादि में छिपे हुए, एवं तृणों ;घासोंद्ध से आच्छादित कूपों के समान तुझ नीच का अनुकरण करेगा।

शकुन्तला के द्वारा यहॉ दुष्यन्त के लिए तीन विशेषण–पदों का प्रयोग किया गया है। यथा– अनार्य, र्ध्मक×चुकप्रवेशिनः, तृणच्छÂकूपोपमस्य। **अनार्य– जहॉ तक मेरा इतिहास ज्ञान है** प्राचीनकाल में किसी सभ्य–व्यक्ति एवं समाज में प्रतिष्ठित भद्रपुरुष के लिए अनार्य शब्द का प्रयोग, सबसे अपमानजनक–टिप्पणी, तथा गाली मानी जाती थी। **र्ध्मक×चुकप्रवेशिनः,–** र्ध्म के चोगे में प्रवेश किये हुए।अर्थात् स्वयं धर्मिक न होते हुए भी र्ध्म को आवरण बनाकर दूसरों को ठगने वाले अधर्मिक, पाखण्डी या कपटी। **तृणच्छÂकूपोपमस्य–** तृणैः छÂः कूपः तृणच्छÂकूपः तस्य उपमा यस्य तस्य, जिसकी उपमा तिनकों से ढके हुये कुऍं को देखकर की जा सकती है। उसकी वास्तविकता को जाने विना हरी–हरी घास पर विश्वासपूर्वक चलते हुये कुऍं में गिरे विना कैसे बच सकते हैं। इतना ही नहीं शकुन्तला राजादुष्यन्त को धूर्त कहकर सम्बोध्ति करती है। यथा– **कथमनेन कितवेन विप्रलब्धस्मि ।**

एक प्रभुत्वशाली एवं पराक्रमी राजा, जिसके पराक्रम एवं पुरुषार्थ की जरुरत देवताओं तक को है। मातलि के द्वारा यु(विजयहेतु दुष्यन्त को इन्द्र के आदेश पर देवलोक को ले जाना, अपने पराक्रम से यु(में इन्द्र को विजयी बनाना, इस बात का प्रमाण है। जिसका यश एवं साम्राज्य सर्वत्रा विश्रुत है, ऐसे राजा को उसी की राजसभा, र्ध्मसभा, एवं राजमहल में सभी सभासदों के समक्ष, एक आपÂसत्वा, माता–पिता एवं पति से परित्यक्ता नारी के द्वारा इस तरह का कठोर प्रत्युत्तर देना, उस नारी के असाधरण–साहस, अप्रतिम–आत्मविश्वास, कठिन से कठिन निर्णय लेने की क्षमता, अपना जीवन अपने अनुसार जीनें की इच्छा, इत्यादि उसके सशक्त–व्यक्तित्व एवं सामाजिक–सामर्थ्य को दर्शाता है।

शकुन्तला का यह निर्भीक एवं सशक्त प्रत्युत्तर इतना जोरदार था, और इतने सत्य एवं आत्मविश्वास से दिया गया था कि स्वयं दुष्यन्त का आत्मविश्वास हिल जाता है, वह विचलित हो जाता है, उसकी बु(संदिग्ध् हो जाती है, उसे अपने आप पर संदेह होने लगता है। वह खुद से कहता है–

संदिग्ध्बु(ि मां कुर्वन्नकैतव इवास्याः कोपो लक्ष्यते। [4]

दुष्यन्त का दिमाग भलें ही शकुन्तला की बात को अस्वीकार कर

रहा हो, परन्तु दिल को मानों विश्वास हो चला कि शकुन्तला शायद ठीक कह रही है। यथा–

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम्।
बलवत्तु दूयमानं प्रत्याययतीव मे हृदयम्।। [5]

एक स्वाभिमानी नारी, एवं वीरमाता के लिये इसके अतिरिक्त और उपाय ही क्या है कि वह स्वयं अपना बचाव करे और साहसपूर्वक समुचित प्रत्युत्तर दें। शकुन्तला ये अच्छी तरह से जानती थी कि यहॉ अगर वो चूप रहती है, या रोती है तो सभी की दृष्टि में सारा दोष उसी पर आएगा, अतः शकुन्तला के द्वारा इस प्रकार का प्रत्युत्तर दिया गया। किसकी हिम्मत थी कि उसे वेश्या या चरित्राहीन कहने की धृष्टता करें। शकुन्तला के इस रौद्र रूप से राजा भी सकपका गया, और उसे अपने उपर सन्देह होने लगा। शकुन्तला का स्वाभाविक क्रोध, उसकी तनी हुई भौहें और राजा को कहे गये कठोर शब्द, सारे सभासद को सोचने के लिये विवश कर दिया। पुरोहित की भी सहानुभूति शकुन्तला के पक्ष में जाती है। शकुन्तला का चरित्रा एवं सामाजिक वैशिष्ट्य इतना प्रथित है कि दृषिजन भी उसकी सराहना करते थें। यह तथ्य शार्धैरव के इस कथन से स्पष्ट होता है। यथा–

आजन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यः तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।
परातिसन्धनमधियते यै र्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः।। [6]

इतना ही नही शकुन्तला का सामाजिक सामर्थ्य देखियें वह यहॉ पूर्व स्थापित सामाजिक–परम्परा को तोड़ती हुई प्रतीत होती है। **पतिकुल में दासी के रूप में रहना भी श्रेयस्कर है, अतः तुम्हें यही रहना चाहिए , यथा–**

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा, त्वमसि किं पितुरुत्कुलया त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्।। [7]

अतएव अत्रौव तिष्ठ। शार्धैरव के इस निर्देश एवं हस्तिनापुर राजकुल के राजपुरोहित के द्वारा दिये गये समाधन कि **यह देवी सन्तान उत्पति होने तक मेरे घर रहे,** यथा पुरोहितः–

अत्रा भवती तावदाप्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु। कुत इदमुच्यते इति चेत– त्वं साधुभिरुदिष्टपूर्वं प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रां जनयिष्यसीति। सः चेन्मुनिदौहित्रास्तल्लक्षणोपपÂो भविष्यति, अभिनन्द्य शु(ान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि। विपर्यये तु पितुरस्याः समीपनयनमवस्थितमेव।

इन दोनों ही निर्देशों को अस्वीकार करती है शकुन्तला और अपने सामर्थ्य से ही तपस्विनी का जीवन जीने का प्रण लेती है, साथ ही स्वपुत्रा का परिपालन भी स्वयं करने का दृढ संकल्प लेती है। उस संकल्प के आधर पर अपनी जन्मदात्राी माता मेनका के सहयोग से महर्षि मारीच के आश्रम में तपस्विनी का जीवन व्यतीत करती है, अपने पुत्रा को भी जन्म देती है, तथा उसका पालन पोषण भी हिम्मत से करती है। जैसे कि रामायण में सीता के द्वारा लव–कुश का जन्म एवं पालन–पोषण किया जाता है। ये सब करते हुए शकुन्तला कहीं भी कमजोर नहीं दिखती, दुष्यन्त के द्वारा अस्वीकार करने पर भी वह कहीं से भी कमजोर या अपराधबोध से ग्रसित नहीं दीख पड़ती है। अपितु समाज में गर्व से रह रही है। इतना होने के बावजूद, वह कही भी अपने निर्णय पर पश्चाताप नहीं प्रदर्शित करती, ये उसके आत्मविश्वास का परिचायक है।

सप्तम अघङ्क में दुष्यन्त मातलि के साथ भगवान मारीच के दर्शनार्थ हैमकूट नामक पर्वत पर मारीचाश्रम पहुॅचता है, जहॉ उसका साक्षात्कार पुत्रा सर्वदमन;भरतद्ध एवं पत्नी शकुन्तला से होता है। वहॉ शकुन्तला **'वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।** ' तपस्विनी के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। दुष्यन्त को देखकर यद्यपि मन से पहचान चुकी है, लेकिन पुत्रा सर्वदमन के द्वारा बार– बार यह पूछने पर कि मॉ यह पुरुष कौन है, जो मुझे अपना पुत्रा कहता है। **'मातः! एषः को{पि पुरुषो मां पुत्रा इत्यालिर्धैति।'** इस पर शकुन्तला कहती है**–' वत्स! ते भागध्यानि पृच्छ'।** कहकर बात को टाल देती है। दुष्यन्त के द्वारा बार–बार निवेदन करने पर भी कि मुझे मापफ कर, स्वीकार कर लो, शकुन्तला तब तक दुष्यन्त को मापफ नहीं करती, पुत्रा के समक्ष तब तक स्पष्ट रूप से कुछ नहीं बोलती है, जब तक कि दुष्यन्त शकुन्तला के पैरों में गिरकर क्षमा याचना नहीं कर लेता। यथा–

राजा– ;शकुन्तलायाः पादयोः प्रणिपत्यद्ध–

सुतनु! हृदयात्प्रयादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत्।
प्रबलतमसामेवं प्रायाः शुभेषु प्रवृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां ध्नोत्यहि शघङ्क्या।। [8]

इसके पश्चात् शकुन्तला पुनः उसे आर्यपुत्रा के रूप में स्वीकार करती है, उसे अपने चरणों से उठाती है और कुशलक्षेम पूछती है। ये शकुन्तला के सामाजिक सामर्थ्य का परिचायक है।

इतना ही नहीं शकुन्तला के सशक्त रूप का सर्वाध्कि निदर्शन तब होता है जब वह दुष्यन्त एवं पुत्रा सर्वदमन के साथ तब के **सर्वोच्च–न्यायालय, एवं उस सर्वोच्च–न्यायालय के मुख्य–न्यायधेश महर्षि मारीच के आश्रम में जाती है। ''यह मेरी नवीन उद्भावना है कि यथा वर्तमान युग में न्याय–प्राप्ति का सर्वोच्च स्थान उच्चतम–न्यायालय माना जाता है, ठीक वैसे ही कालिदास ने अपने नायक एवं नायिका को तब के सर्वोच्च–न्यायालय, एवं उसके मुख्य–न्यायाधेश, तथा न्यायाधेशमण्डल से निर्दोष सि(कराकर उन्हे पूरी प्रतिष्ठा एवं सम्मान के साथ समाज में प्रतिष्ठापित करता है।''** जहॉ दृषियों एवं मुनियों की सभा उपस्थित है। वहॉ शकुन्तला भगवान मारीच से आशीर्वाद प्राप्ति हेतु उनकी वन्दना करती है। तदुपरान्त सभी अपना–अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं। सभी के पक्षों को सुनने के बाद महर्षि मारीच के द्वारा निर्णय सुनाया जाता है, जिसमें दुष्यन्त निर्दोष सि(होता है, आदर सहित शकुन्तला को स्वीकार करनें एवं उसकी प्रभुता सुनिश्चित करने का निर्देश दुष्यन्त को दिया जाता है, जिसे दुष्यन्त सहर्ष स्वीकार करता है। मारीच कहते है– वत्से!

आखण्डलसमो भर्त्ता जयन्तप्रतिमः सुतः।
आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव।।
अदितिः– भर्तुरभिमता भव। [9]

साथ ही वहॉ उपस्थित धर्मसभा के द्वारा दुष्यन्त एवं शकुन्तला के गान्धर्वविधि से किये गये विवाह–संस्कार को लोकहित एवं राष्ट्रहित में समुचित माना जाता है। अर्थात् उस विवाह–संस्कार को सामाजिक अनुमोदन प्रदान किया जाता है। यथा च कथयति मारीचः–

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान्।
श्र(ा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत्समागतम्।। [10]

शकुन्तला के पुत्रा भरत को भावि चक्रवर्तित्व राजा के रूप में स्वीकार करने की अनुशंसा भी की जाती है। मारीचः– **भावीनमेनं चक्रवर्तिनमवगच्छतु भवान्**। पश्य–

रथेनानु(ातस्तिमितगतिना तीर्णजलधि
पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधमप्रतिरथः।
इहायं सत्वानां प्रसभदमनात्सर्वदमनः
पुनर्यास्येत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात्।। [11]

साथ ही शकुन्तला को भी अपने पति के प्रति क्रोध नहीं रखने की सलाह दी जाती है, तथा दुष्यन्त के उपर शकुन्तला की ही प्रभुता

स्वीकार की जाती है। यथा– **मारीचः– वत्से! चरितार्थासि। सहर्ध्मचारिणं प्रति न त्वया मन्यु कार्यः**। पश्य–

शापादसि प्रतिहता स्मृतिरोध्रूक्षे भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तवैव।
छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे शु(तु दर्पणतले सुलभावकाशा।। [12]

इस प्रकार सम्पूर्ण समाज की अनुमति एवं न्यायोचित स्वीकृति पाकर शकुन्तला स्व–पुत्रा एवं पति के साथ हस्तिनापुर को आती है। और आदर एवं प्रतिष्ठापूर्वक उसी हस्तिनापुर में प्रतिष्ठित होती है, अपने पुत्रा भरत को हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर आरूढ करती है, उस राज्य की प्रमुख महारानी के रूप में प्रतिष्ठित होती है, जिस हस्तिनापुर से वह अपमानित होकर चली गयी थी।

उपर्युक्त परिशीलन से यह सि(होता है कि एक स्त्राी पात्रा के रूप में शकुन्तला का चरित्रा कितना सशक्त एवं न्यायोचित है। ये बताता है कि एक कोमल एवं मुग्ध नारी भी यदि सत्य के मार्ग पर आत्मविश्वासपूर्वक, दृढप्रतिज्ञ होकर चलती है तो उसकी जीत निश्चित ही है। साथ ही नारी अगर सशक्त, सच्चरित्रा, आत्मविश्वासी एवं साहसी हो तो समाज उसके सामर्थ्य, उसकी प्रतिभा, एवं उसकी कर्मशीलता को स्वीकार ही नहीं करता अपितु उसे समाज में उच्च स्थान एवं गौरव भी प्राप्त होता है। इस तरह के चरित्रा से समाज में नारी का स्थान गौरवान्वित एवं सशक्त होता है। परिवार की अवधरणा को भी सशक्त बनाने की जरूरत है क्योकि अगर परिवार सशक्त होगा, परिवार रूपी संस्था के प्रति सर्वजनों के हृदय में, समग्र समाज में निष्ठा, विश्वास एवं सम्मान की भावना आएगी, लोग पारिवारिक सम्बन्धें एवं बन्धनों को सहेजने और निभाने का संकल्प लेंगे, समाज में नारी स्वतः सम्मानित होगी, आदर प्राप्त करेगी, प्रतिष्ठित भी होगी। अतः परिवार को सशक्त बनाना वर्तमान की अनिवार्य जरूरत है। साथ ही समाज का यह दायित्व है कि वह स्त्राी को भी समान रूप से आगे बढने के लिए प्रोत्साहित करें, उसे अवसर उपलब्ध कराऍं, जहॉ उसकी प्रतिभा का समुचित उपयोग समाज एवं राष्ट्रनिर्माण में हो सके। यहॉ उसकी जीत या हार की बात न करते हुए, उसे पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। यह सब नारी के नारीत्व को, प्रकृतिप्रदत्त विशिष्ट एवं नैसर्गिक गुणों , यथा प्रेम, दया, स्नेह, ममता, कोमलता, धैर्य, सहनशीलता, क्षमाशीलता इत्यादि को बचाते हुए किया जाना चाहिए, न कि उसे पुरुष बनने के लिए प्रेरित करके। प्रकृति ने नारी को विशेष बनाकर भेजा है, अतः उस विशेष को बनाए रखना चाहिए। प्रकृतिप्रदत्त दायित्वो का निर्वहण करते हुए उसे समाज में वह प्रतिष्ठा, सम्मान एवं सामाजिक अवसर मिलना चाहिए, जिसकी वह सही मायने में अध्किारिणी है।